CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

10-5

प्राण-प्रिय-काव्य

5007.

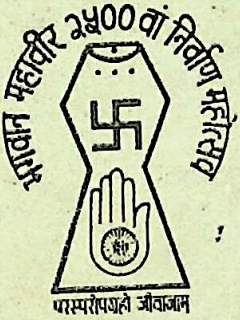

संग्रहकर्त्ता :

बाबूलाल जैन

१, बीडन स्ट्रीट,

कलकत्ता—७००००६

प्रकाशिका :

श्रीमती चम्पा देवी जैन

१७५, तिलभान्डेश्वर मार्ग,

बुरजा २०३१३१

(उ० प्र०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

172
9/11/90

❀ श्री नेमिजिनेन्द्राय नमः ❀

श्री रतनसिंह मुनि रचित

प्राण - प्रिय - काव्य

(भक्तामरस्तोत्र के चौथे पदों की समस्यापूर्ति)

जिसे

देवरी (सागर) निवासी श्री नाथूराम जी प्रेमी ने

वीर सम्वत् २४३८ में

सरल हिन्दी अर्थ से विभूषित किया

और

मास्टर छोटेलाल जी जैन, खुरई (सागर) निवासी ने

वीर सम्वत् २४४२ में

खड़ी बोली में समान छन्दरूप हिन्दी पद्यानुवाद किया

श्री वीर जयन्ती दिवस, दिनांक २४ अप्रैल १९७५ ई०

मुद्रित संख्या २०१ प्रति] [मूल्य—सदुपयोग

सुदर्शन प्रेस, खुरजा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

卐

विघ्न हरण मंगल करण, वीर जिनेश मनाय ।
अमल अखंडित विमलतर, नमूँ शारदा माय ॥
नमूँ शारदा माय मात कीजे, कल्याण हमारा ।
जाने द्वादशाङ्ग रच कर, कीना उपकार हमारा ॥

भगवान् महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव वर्ष में
फाल्गुन अष्टानिका पर्व की समाप्ती के उपलक्ष में

श्री.....को भेंट

बाबूलाल जैन, चम्पादेवी जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

❀ प्रस्तावना ❀

प्रिय पाठक वृन्द !

मनुष्य के जैसे शोभा, सौन्दर्य, विनय, धार्मिकता, चतुराई, वाङ्माधुर्य सत्यता और सर्वप्रियता आदि उत्तम गुण होने चाहिये। वैसे ही सरसता भी उत्तम गुणों में से एक सद्गुण है। इसके बिना मनुष्य फीका ज्ञात होता है।

इसीलिये सदा ही से विद्वान सरसता सम्पादन करने का प्रयास करते हैं, इसे प्राप्त करने के लिये सबसे उत्तम विषय काव्य को ही श्रेष्ठ बतलाया है। काव्यों का पढ़ना-पढ़ाना और मनन करना ही सरसता गुण को प्राप्त करना है। यही कारण है कि संस्कृत साहित्य में काव्य की प्रचुरता दिखाई देती है, हिन्दी में भी इस गुण को बड़ा आदर प्राप्त है। हिन्दी में बनारसीदास, वृन्दावनदास, बुलाकीदास, सूरदास, दौलतराम आदि बड़े बड़े कवि हो गये और उन्होंने सरसता को बहुत अच्छा विकसित किया। इसलिये सरसता का अभ्यास सर्व साधारण को भी अवश्यमेव करना चाहिये।

सरसता के लिये शृङ्गार रस ही प्रधान माना गया है। यह दो प्रकार का है—(१) संयोग शृङ्गार (२) वियोग शृङ्गार, संयोग की अपेक्षा वियोग में अधिक सरसता रहती है।

संस्कृत में प्राणप्रिय नामक छोटासा काव्य है जिसे मुनि श्रीरत्नसिंह नामक कवि ने 'राजीमती' और बाइसवें जैन तीर्थंकर श्री 'नेमिनाथ' के विरह पर निर्माण किया है—

प्रस्तुत कथा का सारांश इस प्रकार है कि—एक समय श्री कृष्ण जी के अनुरोध से रुक्मणि, सत्यभामा आदि कृष्ण जी की रानियों अर्थात् श्री नेमिनाथ जी की भ्रात पत्नियों ने वसन्त क्रीड़ा में श्री नेमिनाथ जी के साथ आमोद प्रमोद से जल-क्रीड़ा की और उन्हें अपनी रसिकता से प्रसन्न करके उनका विवाह स्वीकार करा लिया तदनुसार जूनागढ़ के महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उग्रसेन की पुत्री राजीमती से विवाह सम्बन्ध स्थिर हुआ। श्री नेमिनाथ जी को सम्पूर्ण शृङ्गार सहित दूल्हा बना कर दुलहिन राजीमती के साथ परिणय हेतु बड़ी धूमधाम से बारात जूनागढ़ ले गये। प्रभु ने देखा कि एक रक्षित स्थान में बहुत से पशु घिरे हुए बिलविला रहे हैं, सुसज्जित रथ पर आरूढ़ नेमिनाथ ने सारथी से पशुओं को बन्दी बनाने का कारण पूछा, तब सारथी ने निवेदन किया कि दयावान ! आपके विवाह में मलेच्छ खंड के राजे महाराजे पधारे हैं, इसके मांस से उनको भोजन कराया जायगा। यह सुनते ही स्वामी को परम वैराग्य होगया, सोचने लगे कि धिक्कार है इस संसार को और मेरे इस जीवन को; जिसके लिये हजारों प्राणी निष्प्रयोजन ही वध किये जायेंगे।

इस प्रकार उदासीन होकर विवाह शृङ्गार और वस्त्राभूषणों को स्वजन, परजनों के रोकने पर भी उतार कर फेंक दिये और गिरनार पर्वत पर जैनेश्वरी दीक्षा धारण करली। यह समाचार जब राजदुलारी राजीमती को ज्ञात हुआ कि मेरे जीवनालम्ब, मुझे निराधार विरहिणी करके छोड़ गये हैं तो इस गृह में तो क्या इस संसार में भी रहना व्यर्थ है। अतः वह अपनी सखियों सहित गिरनार पर्वत पर गई; नाना प्रकार से विनय अनुनय करने लगी कि स्वामी दीक्षा का परित्याग करके मेरा पाणिग्रहण करलेवें। भगवान नेमिनाथ अपनी प्रतिज्ञा पर आरूढ़ थे, इतना ही नहीं बल्कि उन्हों ने उपदेश देकर राजीमती को भी संसार से विरक्त कर दिया और वह आर्जिका की दीक्षा लेकर तपस्या करने लगी। इस छोटे से काव्य में राजीमती के उन्हीं विनय, अनुनयों का वर्णन है। श्रीमान् तुङ्ग मुनि के बनाये हुए संस्कृत 'भक्तामरस्तोत्र' के चौथे चरण की समस्या को लेकर 'प्राण-प्रिय' नामक काव्य की रचना श्रीरतनसिंह मुनिने की है, इसका हिन्दी पद्यानुवाद खुरई निवासी मास्टर छोटेलाल जी जैन ने किया और सरल हिन्दी अर्थ देवरी निवासी श्री नाथूराम जी प्रेमी ने किया। जिन्हें धन्यवाद है।

—बाबूलाल जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नमः श्रीनेमिजिनेन्द्राय

श्रीरत्नसिंहमुनिविरचित

प्राणप्रिय-काव्य

(समवृत्त समश्लोकी एवं सरल हिन्दी अर्थ सहित)

प्राणप्रियं नृपसुता किल रैवताद्रि—
शृङ्गाग्रसंस्थितमवोचदिति प्रगल्भम् ।
अस्मादृशामुदितनील वियोगरूपेऽ —
'वालम्बनं भव जले पततां जनानाम्' ॥१॥

प्राणेष्टशोभित शिखा गिरनार की पै ,
राजीमती तब कहे उनसे यही है ।
हे श्याम सुन्दर प्रभा, भय दे सहारो ,
विच्छेद रूप जल से हंमको उवारो ॥१॥

अर्थ-"उग्रसेन राजा की पुत्री राजीमती गिरनार पर्वत के शिखर पर विराजमान हुए अपने प्रतिभावान् प्राणप्यारे श्रीनेमिनाथ जी से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार बोली कि, हे श्यामसुन्दर, वियोगरूप जल में पड़ते हुए हम जैसे जनों के लिये आलम्बन हूजिये, अर्थात् मुझे सहारा देकर इस विरहसमुद्र से निकाल लीजिये।"

ऊचे सखीसमुदयः सदयस्ततस्तां
चेतः स्थिरीकुरु नितम्बिनि मा विषीद ।
चञ्चच्चकोरचटुलाक्षि कृते भवत्याः
'स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्' ॥२॥

पीछे दयायुत कहें इस भांति आली[1]—
प्यारी चकोर सम चंचल नेत्र वाली ।
एरी नितम्बनि ! अभी चित शांति कीजे—
तेरे लिये विनित[2] हैं हम नेमि जी से ॥२॥

"तदन्तर उससे उसकी सखियों ने दयावान् होकर कहा, हे नितम्बिनि ! चित्त को स्थिर कर विषाद मत कर। हे चकोर के समान चंचल और चमकते हुए नेत्रों वाली सुन्दरी, तेरे लिए पहले हम ही श्री नेमिनाथ से प्रार्थना करती हैं।"

सम्पूर्णचन्द्रवदनां मदवावतार—
रामां विहाय नवयौवनचारुवेषाम् ।
वृद्धोचितं वयसि संयममुग्रमेन—
'मन्यः क इच्छति जनः सहसा गृहीतुम्' ॥३॥

---

१ सखी २ विनती करते हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कामावतार गृहिये युवती नवीनी—
राकेश आस्यसम[1] जो रुचि रूप[2] भीनी।
है योग्य वृद्ध वय में यह योग भारी—
चाहे इसी उमर में सब लोग नारी ॥३॥

"हे कामदेव के अवतार, इस नवीन यौवन और सुन्दर वेषवाली तथा पूर्णचन्द्र के समान मुखवाली स्त्री को छोड़ कर जवानी की उमर में भला इस वृद्धावस्था के योग्य कठिन तप को और कौन मनुष्य है, जो सहसा धारण करने की इच्छा करे ? अर्थात् इस अवस्था में लोग स्त्री को ही ग्रहण करते हैं तप को नहीं।"

स्वामिन् प्रसीद मृगबालविलोलनेत्रा—
मङ्गीकुरुष्व दयितामविलम्बमेनाम्।
अस्मिन्नवे वयसि नाथ वियोगरूपं
'को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्'॥४॥

ऐसे वियोग कधि को नव[3] ही दशा[4] में—
तैरे[5] सुताकन कहां इतनी भुजा में।
हे नाथ हेतु इससे मुत्दि शीघ्र होके—
शावाक्षि लोलमहिला अपनी करो ये ॥४॥

"हे स्वामी, प्रसन्न हूजिये और शीघ्र ही इस छोटी हिरणी के समान चंचल नेत्रों वाली सुन्दरी को अंगीकार कीजिए। हे नाथ,

---

१ मुंह श्रीधर कोष २ जो आकार में शोभा का घर है।
३ नवीन ४ अवस्था में ५ पैरे गौरी कोष।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस नई उमर में वियोगरूपी समुद्र को ऐसा कौन है, जो अपनी भुजाओं से तरने में समर्थ हो ? अर्थात् आप और राजीमती दोनों से यह वियोग सहन नहीं होगा ।"

एतन्मदीरितवचः कुरु नाथ नोचे—
द्रोत्स्यत्यरं क्षितिपतिः स्वयमुग्रसेनः ।
कुर्वन्तमुत्तमतपोऽपि भवन्तमेष—
'नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम्' ॥५॥

मेरे यही वचन जो नहिं मान लेंगे—
तो उग्रसेन नृप आकर रोक देंगे ।
उत्कृष्ट[1] योग यदि आप करें सही ये—
तो क्या बचाव शिशुका करि है नहीं वे ॥५॥

"हे नाथ, आप हमारी यह बात मानें अर्थात् इस सुन्दरी को अंगीकार करें। नहीं तो, स्वयं महाराज उग्रसेन ही शीघ्र आकर आपको रोकेंगे। यद्यपि आप यह उत्कृष्ट तप कर रहे हैं, तो भी क्या वे अपनी बालिका की रक्षा करने के लिये नहीं आवेंगे और आपको नहीं रोकेंगे ? अवश्य ही रोकेंगे ।"

सम्भोगकेलिकुशलं रमणं रसज्ञाः
स्त्रीणामकृत्रिमविभूषणमामनन्ति ।
यन्मण्डनं वनततेर्नियतं वसन्त—
'स्तच्चारुचूतकलिकानिकरैकहेतु' ॥६॥

---

१ अति उत्तम तप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसा रसज्ञ कहते रति केलि ज्ञाता—
शोभा समूह पति है तिय का विधाता।
आभा[1] वसन्त रितु की वन में सुहावे[2]—
सो आम मौर शुचिता उसकी बनावे ॥६॥

"सखियों के इस प्रकार कह चुकने पर राजमती ने कहा :—हे नाथ! रस रीति के जानने वाले मानते हैं कि, सम्भोगक्रीड़ा में चतुर पति ही स्त्रियों का बिना बनाया-स्वाभाविक आभूषण होता है अर्थात् पति के कारण ही स्त्री की शोभा होती है। वन पंक्तियों के लिये जो वसन्त ऋतु शृङ्गारस्वरूप होती है, सो सुन्दर आम के मौरों के कारण से ही होती है।"

दोः कन्दलोग्रथितगाढतरोपगूढे—
नान्योन्यचुम्बितमुखेन सखे प्रकामम्।
सङ्गेन ते विलयमेति वियोग दुःखं
'सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम्' ॥७॥

इच्छानुसार मिलना, जब हो तुम्हारा—
आलिङ्ग चुम्बन महायुग में अपारा।
होवे वियोग दुख दूर तभी हमारा—
जैसे दिवाकर विभा तम[3] जाय सारा ॥७॥

"हे सखे, जिसमें भुजलताओं से लिपटा हुआ अतिशय गाढ़ आलिंगन और परस्पर मुखचुम्बन होगा, तुम्हारे उस यथेच्छ समागम

---

१ खूबसूरती २ दिखावें ३ प्रकाश शब्दार्थ भानुः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से वियोगरूपी दुःख इस तरह विलीन हो जायगा, जिस तरह रात का अन्धकार सूर्य की किरणों से नष्ट हो जाता है।"

भाग्योदयात्तदिन मे दिनमेत्वहो नौ
यस्मिन्मिथो मिलितयोः सुरतश्रमोत्थः।
वक्षःस्थले विहितहारविशेषशोभो
'मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः' ॥८॥

मेरे लिये समय वो कब भाग्य लावे—
दोनों मिले सुरत[1] से तब स्वेद[2] आवे।
ते स्वेद बूंद उरहार[3] बढ़ायँ शोभा—
मोती समान उनकी लगि है प्रभावा[4] ॥८॥

"हे स्वामी, भाग्य के उदय से मेरे लिये वह दिन कब आवे, जब अपन दोनों के परस्पर मिले हुए जोड़े के सुरतक्रीड़ा के श्रम से निकले हुए पसीने के बिन्दु वक्षःस्थल में पहने हुए हार की शोभा को बढ़ाते हुए मुक्ताफलों की (मोतियों की) प्रभा को धारण करे।"

नेत्रामृते सुहृदि नाथ निरीक्षितेऽपि
हृष्यन्ति यद्भुवि विशोऽत्र किमद्भुतं तत्।
मित्रोदयेऽपि च भवन्ति विचेतनानि
'पद्माकरेषु जलजानि विकाशभाञ्जि' ॥९॥

---

१ मैथुन २ पसीना ३ हृदय में पहने हुए हार की शोभा बढ़ाते हुए ४ दीप्ति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वामि सुधा नयन के तुम हो सनेही—
तो क्यों नहीं मुदित हों नर देख के ही ।
सूखे हुए कमल ही जल आशयों के—
होते प्रफुल्ल लखि ज्यों रवि मित्र को वे ।।९।।

"हे नाथ, आप नेत्रों को अमृत के समान लगने वाले प्यारे मित्र हैं। इसलिये यदि आपके देखने से इस पृथ्वी के मनुष्य हर्षित होते हैं, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? सरोवरों के कुमल्हाये हुए कमल मित्र के अर्थात् सूर्य के उदय होने पर ही विकसित होते हैं—खिल उठते हैं।"

कान्त्या कुलेन वयसा सुगुणैश्च तैस्तै
स्तुल्यामिमां तव वृणीष्व कुशाग्रबुद्धे ।
प्राप्नोति शं स खलु दारजनं जिनेश
'भृत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति' ।।१०।।

स्वीकार है चतुर जी करिये सुदासी—
जो है कुलीन युवती[1], छवि चन्द्रमा सी ।
स्त्री को विभूत[2] निज से करते निजी जो—
मान, अवश्य करके रहते सुखी वो ।।१०।।

"सुन्दरता, कुलीनता, जवानी, तथा और और भी गुणों में जो आपके समान है ऐसी इस दासी को, हे कुशाग्रबुद्धे, (हे चतुर) ब्याह लीजिये स्वीकार कर लीजिये। क्योंकि हे जिनेश, इस संसार में

---

१ जवान स्त्री गौरीकोष २ ऐश्वर्य विशेष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो पुरुष अपना आश्रय करने वाली स्त्री को निज विभूति से अपने समान कर लेता है, वह निश्चय से सुख को प्राप्त होता है।"

गोरोचनारुचिरगौरतराङ्गयष्टि—
मेनां विहाय कथमाचरसि व्रतं भोः।
त्यक्त्वा सुधारसमहो वत भाग्यलभ्यं
'क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत्'॥११॥

गौरोचनी बदन की प्रिय रूपवाली—
दासी वियोग कर क्यों यह योग्यता ली।
पियूष[1] पाकर अहो तकदीर[2] से जो—
चाहे नदीश[3] जल को किस भांति से वो॥११॥

"हे प्रभो, गौरोचन के समान सुन्दर और अतिशय गौरांगी इस दासी को छोड़ कर आप व्रत क्यों धारण करते हैं? अहो! भाग्य से प्राप्त हुए अमृत को छोड़ कर ऐसा कौन है, जो समुद्र के खारे पानी के पीने की इच्छा करता है?"

एणे दृशौ शशधरे वदनं दिनेशे—
पश्यामि धामनिलयं गमनं गजेन्द्रे।
हा किं करोमि हृदयेश वृतैकसंस्थं—
'यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति'॥१२॥

---

१ अमृत २ भाग्य ३ समुद्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है सोम[1] सूरज गजेन्द्र[2] तथा मृगा में—
ये आपका मुख विभा गति और आंखें।
सारा स्वरूप पर हा! तुम सा कहीं ना-
जो देखलूं नयन से वह एक में ना ॥१२॥

"हे हृदयेश्वर, मैं हरिण में आपके दोनों नेत्र, चन्द्रमा में आपका उज्ज्वल मुख, सूर्य में आपका तेज और गजराज में आपकी चाल देखती हूं। परन्तु हाय, मैं क्या करूं, आपके समान एकत्र स्थित सारा रूप दूसरा कहीं नहीं है। अभिप्राय यह है कि, आपके एक एक अंग की उपमाएँ तो संसार में मिलती हैं, पर आपके सारे रूप की तुलना किसी से भी नहीं हो सकती है, जिसे देख कर मैं कुछ धैर्य धारण करूं।"

यन्निर्मितं निशि निशाकरमण्डलेन
गुप्तं तमो विरहिणिव्रजघातघोरम्।
प्रद्योतनः प्रकटयत्यखिलं तदाशु
'यद्वासरे भवति पाण्डु पलाशकल्पम्'॥१३॥

ये चन्द्र मण्डल महा तम[3] को बनाके—
ले प्राण ही विरहणी[4] समुदाय पा के।
देता दिखा रवि उसे तब चन्द्र हो यों—
टेसू समान दल[5] ज्योति[6] बिना लगे ज्यों ॥१३॥

---

१ चन्द्रमा २ गजराज
३ अधिक अंधकार ४ प्रोषित पतिका नायका ५ पत्ता ६ कान्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"हे नाथ, ये चन्द्रमण्डल रात को जो विरहिणी स्त्रियों का प्राण लेने वाला घोर अन्धकार बनाता है, और छुपा कर रखता है, सूर्य उस सबको शीघ्र ही प्रकाशित कर देता है। यही कारण है कि, चन्द्रमा अपनी कृति के प्रकट हो जाने से दिन में पलाश के (टेसू के) सफेद पत्ते के सदृश कान्तिहीन हो जाता है—उसका मुँह फीका पड़ जाता है। भाव यह कि, चन्द्रमा की कृति को तो सूर्य प्रगट कर देता है, पर आपकी कृति को – आपने जो मुझे वियोग दुःख दिया है उसको, कोई प्रकाशित नहीं करता।"

तत्किं वदामि रजनीसमये समेत्य
चन्द्रांशवो मम तनुं परितः स्पृशन्ति।
दूरे धवे सति विभो परदारशक्तान्
'कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम्'॥१४॥

मेरा शरीर निशि में निशिनाथ[1] की वे –
छूतीं[2] चहूँ तरफ से किरणें विभो हे।
प्रेमी रहें पुरुष जो पर नारियों के—
रोके विहार[3] उन कौन अनाथ[4] होके॥१४।

"मैं क्या कहूं, रात को चन्द्रमा के कर (किरणें) मेरे शरीर को सब ओर से स्पर्श करते हैं—मेरा आलिंगन करते हैं। परन्तु हे विभो, क्या किया जाय? पति के दूर रहने पर पराई स्त्रियों में आसक्त रहने वाले पुरुषों को स्वच्छन्दता पूर्वक संचार करने से कौन रोक सकता है?"

---

१ चन्द्रमा २ स्पर्श करती ३ आनन्द से फिरना
४ पति के पास न होने पर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वं मया सह विवाहकृते समागा—
मुक्तिस्त्रिया त्वमधुना च समुद्यतोऽसि ।
चेच्चञ्चलं तव मनोऽपि बभूव हा तत्—
'किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित्'॥१५॥

आये विवाह करने पहिले हमी से—
तैयार और अबतो तिय मुक्ति ही से ।
जो आपका सुमन[1] ये चपला[2] बनेगा—
तो क्या सुमेरु गिरि शैल[3] कभी चलेगा ॥१५॥

"हे नाथ, पहले तो आप मेरे साथ विवाह करने के लिये आये थे, और अब आप मुक्तिस्त्री से विवाह करने के लिये उद्यत हैं! यदि आपका मन भी इस तरह चंचल हो गया, तो क्या सुमेरु पर्वत का शिखर भी कभी चला होगा ?"

पर्यङ्कसुन्दरतरे ज्वलितप्रदीपे—
कीर्णप्रसूतनिवहे शयनीयगेहे ।
एका शये कथमहं यदि वृष्णिवंश—
'दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः' ॥१६॥

पर्यङ्क[4] पै शयन के सुम[5] भी बिछे हैं—
और दीप सुन्दर वहां जलते हुए हैं ।
देखो परन्तु यदुवंश चिराग[6] प्यारे—
कैसे करूं शयन मैं सु बिना तुम्हारे ॥१६॥

---

१ स्वच्छ मन २ चंचल ३ शिखर ४ पलंग ५ पुष्पफल
६ प्रदीप यदुवंश के शिरोमणि अर्थात (श्री नेमिनाथ जी)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'जिस शयनमन्दिर में अतिशय सुन्दर पलंग बिछ रहा है सुगंधित फूल बिखरे हुए हैं और दीपक जल रहे हैं, उसमें जगत के प्रकाश करने वाले यदुवंश के दीपक यदि एक आप नहीं हैं, तो प्यारे, बतलाओ, मैं अकेली कैसे सोऊँ ?'

हृतपङ्कजस्य न कथं विदधासि बोधं—
नो वा वियोगतमसाः कुरुषे विनाशम् ।
प्रोद्यत्करप्रसरतः परितो यतस्त्वं—
'सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र लोके' ॥१७॥

हो भानु से अति बड़े प्रभु जी प्रभा में—
फैलाव[1] तो फिर करो निज की भुजाएँ ।
होवे वियोग तम वा उर कंज[2] हीये—
संहार[3] और खिलना[4] सब भांति ही से ॥१७॥

'हे मुनीन्द्र आप लोक में सूर्य से भी अधिक महिमा के धारण करने वाले प्रसिद्ध हैं, फिर आप अपने उद्यमशील करों को (पक्ष में, किरणों को) सब ओर से प्रसार करके अर्थात् भुजाओं से वेष्टित कर के मेरे हृदय कमल को प्रफुल्लित क्यों नहीं करते ? तथा वियोगरूपी अंधकार का विनाश क्यों नहीं करते ? (ऐसा किये बिना आप सूर्य सरीखे कैसे हो सकते हैं ? जैसे वह अपने करों से कमलों का विकास और अन्धकार का विनाश करता है, उसी प्रकार आपको अपने भुजा-लिङ्गन से मेरे हृदय को प्रफुल्लित और वियोग को नष्ट करना चाहिये)'

---

१ प्रसार शब्दार्थ भानु: कोष २ कंजकमल ३ नष्ट ४ प्रफुल्लित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तद्वीक्षितं प्रकुरुते परितापमङ्गे—
ह्लादं तत्तु सम्मदममन्दतमं तनोति ।
चित्रं विभो तव मुखं सुतरां विभाति—
'विद्योतयज्जगदपूर्वशशाङ्कबिम्बम्' ॥१८॥

शीताशु[1] देख तन ताप[2] उठे घनेरा—
हो किन्तु चन्द्र मुख से मनमोद मेरा ।
ठण्डा विभो हृदय हो मुख देखते ही—
है आप का जगत में प्रिय चन्द्र ये ही ॥१८॥

"आश्चर्य है कि, चन्द्रमा के देखने से तो शरीर में बड़ा भारी ताप उठता है—वियोगाग्नि सुलग उठती है, परन्तु आपका यह मुखचन्द्र देखने से अतिशय आनन्द होता है—हृदय शीतल हो आता है। इसलिए हे विभो, आपका मुख जगत को प्रकाशित करने वाला एक अपूर्व चन्द्रमा है।"

इत्थं स्तुतो यदि विभो विरहं भिनत्सि—
भिन्नैस्तदा रमण संवननैरलं मे ।
दावानलः शममुपैति घटाम्बुभिश्चेत्—
"कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः" ॥१९॥

जो हे विभो विनय से विरहाग्नि खोवें—
तो न वशीकरण[3] के पर कर्म होवें ।

---

१ चन्द्रमा २ संताप शब्दार्थ भानु कोषः ३ वश में करने के दूसरे काम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दावाग्नि[1] को जल घड़े यदि शान्ति देवें—
तो काम क्यों जलद से हम व्यर्थ लेवें ॥१९॥

"हे विभो, इस प्रकार स्तुति करने से यदि आप मेरी विरहज्वाला को शान्त कर देंगे, तो फिर हे रमण, मुझे वशीकरण की अन्य क्रियाओं से क्या प्रयोजन है ? दावानल यदि घड़े के जल से ही शान्त हो जावें, तो फिर पानी के भार से झुके हुए बादलों से क्या काम है ?"

याभिः कदाचिदपि देव निरीक्षितस्त्व—
मन्येन ताः कथमहो रतिमाप्नुवन्ति ।
रत्ने यथा सहृदयाः खलु सादराः स्यु—
"र्नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि" ॥२०॥

हे देव जो लख लिया तियने तुम्हें ही—
कैसे करे वह भला पर को सनेही ।
क्यों की करें स हृदयोमणि मान जैसा—
हैं कांच तेजपरमान[2] करें न वैसा ॥२०॥

"हे देव जिन स्त्रियों ने आपको कभी एक बार भी देख लिया, वे भला दूसरों के साथ कैसे प्रेम करें ? क्योंकि जो सहृदय पुरुष हैं, वे जैसी रत्न में आदरबुद्धि रखते हैं, वैसी कांच के टुकड़ों में यद्यपि वह किरणों से आकुल अर्थात् प्रकाशमान् होता है—तो भी नहीं रखते हैं । तात्पर्य यह कि, आप जैसे पुरुष रत्न का दर्शन करके अब मैं अन्य कांच खंड के समान पुरुषों में प्रेम नहीं कर सकती ।"

---

१ जंगल की आग २ किरण वाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राणेश पूर्वभवसन्ततिसन्निबद्ध—
स्नेहस्त्वमेव रमणो मम कामरूपः ।
विद्याधरोऽपि मदनोऽपि न वासवोऽपि—
"कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि" ।२१।

प्राणेश आप क्रम से पहिले भवों के—
कामावतार पति हो रतिनाथ मेरे ।
तो क्या भवान्य[1], इसमें मन ले सके को—
चाहे खगेश अमरेश[2] मनोज[3] भी हो ।।२१।।

'हे प्राणनाथ, आप ही मेरे पूर्व के अनेक जन्मों से बँधे हुए स्नेह के स्वामी कामदेवस्वरूप पति हैं । सो इस भव में तो क्या अन्य भवों में भी कोई मेरे मन को हरण नहीं कर सकता; चाहे वह विद्याधर हो, चाहे कामदेव हो, और चाहे साक्षात् इन्द्र ही हो ।"

निष्कारणं मयि यथा वहते विरोध—
मेषा तथा न हि विभो निखिला दिशस्ताः ।
मत्पीडनार्थमचिरात्सकलेन्दुबिम्बं—
'प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम्' ।२२।

हे नाथ पूरब दिशा हम से विरोधी—
वैसी नहीं पर दिशा रहती स क्रोधी ।
देती अतीव दुख प्राच्य मुझे यही है—
शीतांशु पूर्ण हरबार उगा रही है ।।२२।।

---

१ दूसरे भव में २ इन्द्र ३ कामदेव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"हे विभो, जिस प्रकार बिना कारण यह पूर्व दिशा मेरे साथ विरोध करती है, उस प्रकार अन्य सब दिशायें नहीं करतीं। मुझे दुःख देने के लिये तो यह पूर्व दिशा ही स्फुरायमान किरणों को धारण करने वाले पूर्ण चन्द्र को बार बार उत्पन्न करती है।"

गत्वा निजं पुरमवाप्य नराधिपत्वं —
साकं मया सफलयाशु वयो नवीनम् ।
तत्रोचितं कुरु वृषं यदि मुक्तिकामो–
'नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र पन्थाः'।२३।

प्यारे चलो नगर को अब राज लीजे—
मेरी नई उमर को सफला सु कीजे।
जो मोक्ष प्राप्त करना मनसा यही है—
तो भी वहां कर सको सुख साध्य ही है ॥२३॥

"अब प्यारे, अपने नगर को चलकर और राजपद को प्राप्त कर के मेरे साथ इस नई उमर को सफल कीजिये। और यदि आपकी मोक्ष प्राप्त करने की ही इच्छा हो,तो वहींपर उचित धर्मकी पालना कीजिये, क्योंकि हे मुनीन्द्र, इसके सिवाय मोक्ष का कोई दूसरा कल्याणकारी मार्ग नहीं है। अर्थात् गृहस्थावस्था में रहते हुए धर्म का पालन करना ही मोक्ष का सुखसाध्य मार्ग है।"

संसारसारमृषयः कथयन्ति रामां–
प्राप्तां कथं त्यजसि तां स्वकुलानुरूपाम् ।
एवं विमुञ्च जड़तातिशयं यतस्त्वां–
'ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः' ॥२४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसार सार तिय को मुनि हैं बताते—
तो क्यों उसे सकुल पा फिर हो छुड़ाते ।
ये छोड़िये अधिक आप अबुद्धि को ही—
क्योंकि सुसन्त कहते बुद्धि आपको ही ॥२४॥

'ऋषि मुनि लोग स्त्री को संसार का सार बतलाते हैं। फिर आप से अपने कुल के योग्य प्राप्त करके भी क्यों छोड़ते हैं ? अब आप स अतिशय मूर्खपने को छोड़ दीजिये। क्योंकि आपको सन्त पुरुष र्मल ज्ञानस्वरूप कहते हैं।'

प्राज्ञोऽसि नीतिनिपुणोऽसि गुणाकरोऽसि—
दातासि भो सकलसत्त्वशिवंकरोऽसि ।
मद्वाञ्छितं कुरु विभो बहु किं स्तवीमि—
व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥

न्यायी गुणागर[1] महा विद् हो विभो हे—
दाता शिवङ्कर तुम ही सब जीव ही के ।
ज्यादा करूं विनय क्या प्रगटे प्रभु हो—
पूरी इसी सबब से मनसा[2] करो मो ।२५॥

'हे विभो, आप पंडित हैं, नीति में चतुर हैं, गुणों की खानि हैं, ता हैं, सर्व जीवों का कल्याण करने वाले हैं, और अधिक स्तुति या करूं, आप ही प्रगटरूप पुरुषोत्तम हैं। इसलिये मेरे मनोरथ ो पूर्ण कीजिये—मुझे स्वीकार कीजिये।'

---

१ गुणों के घर २ इच्छा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पीताब्धिरेष अलधीन्निखिलान्निपीय–
सौहित्यमाप वद सम्प्रति किं करोमि ।
मग्ना वियोगजलधौ शरणं श्रिता ते–
'तुभ्यं नमो जिनभवोदधिशोषणाय' ॥२६॥

पी के अगस्ति[1] जल को अति ही अघाना[2]–
तो क्या नदीश[3] उसको अब और पीना ।
मैंने वियोग जल में शरणाय की ली–
सोखें, इसी सबब से बहु वीनती की ॥२६॥

"यह अगस्त्य तो सारे समुद्रों को पीकर तृप्त होगया है – अन्य किसी समुद्र को पीने की अब इसकी इच्छा नहीं है। इसलिये हे नाथ, बतलाइये अब मैं क्या करूं ? इस वियोग समुद्र में मग्न होते हुए मैंने आपका आश्रय लिया है। आपको नमस्कार है। हे जिन, आप मेरे इस समुद्र को शोषण करने हेतु तत्पर हों अर्थात् इस वियोग समुद्र को सोख लीजिये। भाव यह कि, मेरे वियोग समुद्र को अगस्त्य तो अब सोखेगा नहीं, क्योंकि वह तो सब समुद्र को पीकर तृप्त हो गया है। अब केवल आप ही इसके सोखने वाले हैं।

धन्या विभो युवतयः खलु तास्तमायां–
यासां समेति सपदीक्षणयोः प्रमीला ।
धिग्मां जहात्यहह सा विगता यतस्त्वं–
'स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि'।२७।

---

१ कहते हैं कि यह ऋषि घड़े से जन्मा था और जब समुद्र पर कोप किया तो सारे समुद्र को पी गया था 'श्रीधर कोष' २ तृप्त हो गया ३ समुद्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सौभाग्य तीय उनका जिन नींद आती—
है हाय, किन्तु धिक् मो जिन नींद नाभी।
जो नींद में स्वप्न कभी मुझको दिखावें—
तो आपको नयन से कुछ देख पावें ॥२७॥

'हे विभो, रात को जिनके नेत्रों में शीघ्र ही तन्द्रा आ जाती है। उन स्त्रियों को धन्य है। परन्तु हाय! मुझे धिक्कार है, जो वह तन्द्रा मुझे नहीं आती है और इसलिये मैं आपको कभी स्वप्न में भी नहीं देखतीं हूं। यदि थोड़ी बहुत आंख लगे, तो स्वप्न में तो आप को देख लिया करूं।"

दृष्टं विवाहसमये क्षणसंमदाय—
प्रोद्यत्प्रभाप्रसरमीश मुखं तवाभूत्।
नीतं तदैव विधिना तददृश्यतां हि
"विम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति" ॥२८॥

देखा विवाह दिन को मुख आपका जो—
हा दैव ने! त्वरति ही सुबिला दिया वो।
जैसे समीप घन के रवि विम्ब होता—
देखो वहों कुछ घड़ी फिर लोप होता ॥२८॥

"हे स्वामी, विवाह के समय देखा हुआ जो आपका प्रकाशमान मुख थोड़ी देर के लिये आनन्द का कारण हुआ था, हाय! विधाता ने उसको तत्काल ही इस तरह अदृश्य कर दिया; जिस तरह से बादलों का समीपवर्ती सूर्य का प्रतिबिम्ब थोड़ी देर के लिये दीख कर छिप जाता है।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भद्रासने समुपविश्य जगज्जनानां—
मुच्चैर्विभास्यसि विभो नयमार्गमग्र्यम् ।
सन्दर्शयन्यदुकुलैकललाम बिम्बं—
"तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः" ॥२९॥

आसीन आसन विभो शुभरूप[1] हो के—
संसार को सुनयका[2] उपदेश दोगे ।
शोभा वही तब विभो इस भांति आवें—
जैसे कि भानु उदयाचल पैं सुहावे ॥ ९॥

"हे विभो, हे यादव वंश के अद्वितीय शृङ्गार, आप कल्याण रूप आसन पर विराजमान हो कर जगवासी जीवों के लिये श्रेष्ठ नयमार्ग को दिखलाते हुए ऐसे शोभित होंगे, जैसे ऊँचे उदयाचल के शिखर पर सूर्य का बिम्ब शोभित होता है ।"

मद्गात्र मञ्जनरुचा भवता व्यवाये—
नूनं विभास्यति सुवर्णसवर्णवर्णम् ।
सार्द्राम्बुवाहनिवहेन नतेन काम—
"मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम्"॥३०॥

सोने समान तनया[3], अरु सांवले की—
संयोग के समय शुचि यों बनेगी ।
जैसे सुमेरु गिरि का स्वरणी किनारा—
शोभे वही, जब रहे घन-श्याम[4] सारा ॥३०॥

---

१ मंगलस्वरूप २ अच्छी नीति ३ शरीर को ४ काले बादल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Narla, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"हे प्राण प्यारे, संभोग क्रीड़ा के समय मेरा सुवर्ण वर्ण (सोने के रंग सरीखा) शरीर आपके शरीर की साँवरी प्रभा से ऐसा शोभित होगा, जिस तरह से सुमेरु पर्वत का सुवर्णमयी ऊँचा तट पानी से भरे हुए और झुके हुए श्याम मेघों से शोभित होता है।"

सूनाशुगस्य विषमायुधलुब्धकेन—
लक्ष्यीकृतामव मृगीमिव कान्दिशीकाम्।
यस्माद्दयारसमयं समयं जनेऽस्ति—
"प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम्" ॥३१॥

मो काम व्याधि भय भीत मृगी बनाई—
याने निशान उसके शरकी[1] कहाई।
मैं तो सदैव रहती विभु के भरोसे—
नामी[2] दया रसमयी जग में विभो हे ॥३१॥

'कामदेव रूपी व्याधा ने मुझे 'किधर जाऊँ किधर न जाऊँ' इस तरह सोचती हुई भयभीत मृगी की नाईं अपने हिंसास्थान रूप बाण का निशान बनाई हूं। इसलिये हे भगवन्, मेरी रक्षा करो। क्योंकि लोक में आपका तीन जगत का परमेश्वरपना आपके दयारसमयी सिद्धान्त को प्रगट करता है। अर्थात् जब सारे जगत में आपकी दया प्रसिद्ध हो रही है, तब दया कर के कामव्याध के पंजे से मुझे बचा लीजिये।"

---

१ बाण २ प्रख्यात

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बालां विहाय दयनीयतरां गतस्त्वं—
कृत्वा दयां पशुगणे मयि निर्दयत्वम् ।
निर्दूषणं मम हृदं कुरु हे दयालो —
"खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी" ॥३२॥

की है दया पशुन पै अदया[1] हमीं से—
क्या हे विभो उचित था तुमको सही ये ।
आकाश आप यश के प्रिय गीत गाता —
तो क्या निशल्य[2] मुझको न करें विधाता ॥३२॥

"हे नाथ ! आप इस अतिशय दया के योग्य बाला को छोड़ कर चले आये ! आपने पशुओं पर दया करके मुझ पर बड़ी भारी निर्दयता की। परन्तु हे दयालु, आकाश में आपके यश का बखान करने वाले दुन्दु भी बजते हैं, इसलिये इस विषय में मेरे हृदय को शल्य रहित कर दीजिये। अर्थात् मुझे आपकी दया के विषय में जो शंका हो गई है कि–"यह कैसी दया, जिसमें पशुओं पर तो दया परन्तु दया योग्य स्त्री पर निर्दयता की जाती है" सो उसे निकाल दीजिये।

नाथ त्वदीयवचनामृतवृष्टिपूरे—
स्नानाय हन्मदनवह्निविदह्यमाना ।
प्राप्ता कथं स्रवति नैव सुवृष्टि(?)माह्यं (रद्य)
"दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा"।३३।

---

१ निर्दयता २ बाधा रहित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कामाग्नि मो हृदय को अति ही जलावे—
ठण्डा पयूष[1] बचपूर उसे करावे।
जो आप दिव्य बरषा करते नहीं क्यों ?
तात्पर्य भाषण करो मुझसे नहीं क्यों ॥३३॥

"हे नाथ, कामदेव की अग्नि से मेरा हृदय जल रहा है। इसलिये आपके वचनरूपी अमृत की वर्षा के पूरमें स्नान करने के लिये आई हूँ। सो अब वह आपकी दिव्य वर्षा अथवा वचनों की पंक्ति स्वर्ग से क्यों नहीं बरसती है ? अर्थात् आप बोलते क्यों नहीं हैं ?"

कामोरगेन्द्रविषदन्तकृतव्रणाय—
सङ्गं त्वदीयममृतौषधमाशु देहि।
नोचेन्मदीयमरणं हि त्वदीयकाष्ठा—
'दीपत्याजयत्यपि निशामपि सोमसौम्याम्' ३४

कामा हिराज हिय घाव किया विभो हे—
संयोग औषध सुधामय आप दीजे।
नाही अवश्य करके मर जाऊँगी मैं—
है सौम[2] से अति बड़ी प्रतिभा[3] तुम्हारी ॥३४॥

"हे कान्त, कामरूपी सर्पराज के विषदन्तों से मेरे हृदय में घाव हो गये हैं। इसलिये उनके अच्छे होने के लिये आप अपने संयोग रूपी अमृत की औषधि शीघ्र ही दीजिये। नहीं तो अवश्य ही मैं मर जाऊँगी। आपका प्रभाव अपने प्रकाश करके चन्द्रमा से

१ उसे आपके वचनरूपी अमृत का पूर ठण्डा करावे २ चन्द्रमा ३ दीप्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शोभायमान रात्रि को भी जीतता है। अभिप्राय यह कि, आप से तो अमृत औषधि की प्राप्ति होनी ही चाहिये। क्योंकि चन्द्रमा से अमृत झरता रहता है।"

अस्मिल्ललाटपटले व्यलिखद्विधाता—
यां दुर्लिपिं निजकरान्मम प्राणनाथ।
कस्त्वद्विना प्रमृजितुं भगवन्समर्थः—
'भावास्वभावपरिणामगुणप्रयोज्यः'॥३५॥

मेरा बुरा करम जो विधि ने लिखा है—
मैटे उसे पुरुष कौन विभो बिना है।
मेरा ललाट तुम ही पलटा सकोगे—
ना दूसरे समरथी[1] इस भाँति होंगे॥३५॥

"हे प्राणनाथ, विधाता ने मेरे इस ललाट पर जो बुरे अक्षर लिख दिये हैं, उन्हें मिटाने के लिये आपके बिना, अक्षरों के स्वभाव को उलट पलट कर देने वाला और कौन पुरुष समर्थ हो सकता है? अर्थात् मेरी होनहार को बदल सकते हैं तो आप बदल सकते हैं, दूसरा कोई ऐसा सामर्थ्यवान् नहीं है।"

पद्माकरं तमवदातजलं विलोक्य—
चेतो भविष्यति रतिप्रसितं तवापि।
स्वप्रेयसीरतिरतास्तलिनोपमानि—
'पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति'॥३६॥

---

१. सामर्थ्यवान्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं द्वारिका नगर में सर स्वच्छ जोवे—
ताको विलोक[1] अति ही रति चाह होवे।
हैं क्योंकि देव खुश भी प्रमदा[2] प्रियों से—
सो सेज वे शमलकों रचते मजों[3] से ॥३६॥

"अपनी द्वारिका नगरी में जो निर्मल जल के भरे हुए सरोवर हैं, उन्हें देख कर आपका चित्त भी रतिक्रीड़ा करने में आसक्त हो जायगा। क्योंकि उन सरोवरों में अपनी प्यारी प्रमदाओं की रति में लवलीन हुए देवगण शय्या के समान (सफेद) कमलों की रचना करते हैं। भाव यह है कि, जो स्थान देवों को भी रति का कारण है, वह आपके लिये क्यों नहीं होगा ?"

प्राक्पूर्बभौ यदुविभो भवता यथालं—
नैवं तु सम्प्रति महोज्ज्वलराजभिस्तैः।
यादृग्महः स्फुरति शीतकृतः क्षपायां—
'तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि' ॥३७॥

थी आपके सबब ही छबि द्वारिका की—
भूपाल[4] योग्य अब हैं पर कान्ति नाहीं।
ज्यों चाँद तेज[5] निशि में छबि को बढ़ाता—
तारा समूह उसकी समता न पाता ॥३७॥

"हे यदुवंशियों के स्वामी, वह द्वारिका नगरी पहिले आपके कारण जैसी सोहती थी, वैसी अब बड़े कान्तिमान राजाओं से भी नहीं

१ देखकर २ प्यारी सुशील स्त्रियों से ३ आनन्द से ४ राजा ५ प्रकाश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शोभित होती। रात को चन्द्रमा का तेज जिस प्रकार स्फुरायमान होता है, वैसा तेज प्रकाशमान् होने पर भी तारागणों का कहाँ से हो सकता है ? तात्पर्य यह कि, आपके बिना द्वारिका नगरी सूनी शोभाहीन हो रही है।"

कन्दर्प्पदारुणशराहतिभीतचित्ता—
त्वामेव देव शरणार्थमहं प्रपन्ना।
यस्माद्विषं प्रबलमप्यवदातकीर्ते—
'दृष्टवा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम्' ॥३८॥

मैं काम के कठिन ही शर से डराई—
तो आपकी शरण में जगदीश आई।
जो आपकी शरण ले महिमा मई जी -
वे शत्रु भी प्रबल से डरते नहीं भी ॥३८॥

"हे देव, कामदेव के बाणों की कठिन चोटों से डर कर मैं शरण लेने के लिये आपके पास आई हूँ। क्योंकि हे निर्मल कीर्ति के धारण करने वाले, जो लोग आपका आसरा ले लेते हैं, उन्हें प्रबल शत्रु को देख कर भी कुछ भय नहीं होता है।"

सत्यं वचः शृणु विभो रमणं करोमि—
त्वामेव सुन्दर भवानिव वा भवामि।
अन्यो ह्यनन्यमनसं जनमङ्गनाभ—
'नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते' ॥३९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैं हे विभो निज पति तुमको कहूंगी—
या आपके सदृश हो करके रहूँगी।
जो आपके चरण में मन को लगावे—
धावा[1] किसी तरह का उन पै न आवे ॥३९॥

"हे प्रभो, हे सुन्दर, मैं सच कहती हूँ, सुनिये, या तो मैं आपको ही अपना पति बनाऊँगी, अथवा आप ही सरीखी हो जाऊँगी अर्थात् दीक्षा ले लूंगी। क्योंकि हे श्याम, आपके चरणरूपी पर्वत का आश्रय लेने वाले तथा उनमें अनन्यचित्त होकर लवलीन होने वाले जीव पर अन्य कोई आक्रमण नहीं कर सकता है। तात्पर्य यह है कि, दोनों ही अवस्थाओं में मैं आपके शरण में रहूंगी, जिससे कोई आक्रमण नहीं कर सके।"

रुष्टोऽपि देव रमणः प्रमदां पराभि—
भूतां समुद्रविजयात्मज पाति सम्यक्।
यद्विप्रयोगदहनं मदुरो दहन्तं—
'त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषम्' ॥४०॥

हे नाथ क्रोधित हुआ पति भी बचावे—
जो दूसरा सु उसकी तिय को सतावे।
विच्छेद ही अनल[2] मो हिय को जलावे—
तो आप नाम यश[3] नीर उसे बुझावे ॥४०॥

"हे समुद्रविजयात्मज, अर्थात् हे नेमिकुमार, जैसे रूठा हुआ भी पति दूसरों से सताई हुई अपनी स्त्री की अच्छी तरह से रक्षा करता है;

---

१ आक्रमण २ अग्नि ३ आपका सिर्फ नामरूपी (सुकीर्ति) नीर ही उसे बुझावेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसी प्रकार से यह वियोग आग जो मेरे हृदय को जला रही है, उसे हे देव, आपका नाम कीर्तनरूपी जल शमन कर देवे। अर्थात् यद्यपि आप रुष्ट हैं, तो भी इस अग्नि से आपको मुझे बचा लेना चाहिये।"

दष्टा मनोजभुजगेन मुहुर्जपन्ती—
नामापि ते कथमहो गतचेतना स्याम्।
अन्यो भवत्सपदि सुन्दर निर्विषश्चेत्—
'त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः' ॥४१॥

काटी मनोज अहि की तुम नाम को लूं—
तो भी विवेक बिन क्यों हो रही हूं।
हो क्योंकि वे अविष ही नर शीघ्रता में—
जो आप नागदमनी रखते हिया में।।४१।।

"हे सुन्दर, कामदेवरूपी सांप की डसी हुई मैं आपका नाम बारम्बार जप रही हूँ, तो भी चेतनाहीन क्यों हो रही हूँ? यह काम सर्प का विष क्यों नहीं उतर जाता? क्योंकि जिनके हृदय में आपकी नामरूपी नागदमनी जड़ी रहती है, वे पुरुष तो तत्काल ही निर्विष हो जाते हैं।"

उज्जृम्भते हृदयपङ्कजमुज्जहाति—
म्लानिं वपुः फलति कामितकल्पवृक्षः।
नश्यन्त्यशेषविपदश्च वियोगदुःखं—
'त्वत्कीर्त्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति'।।४२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरा हिया कमल में मुदि शीघ्र होता—
इच्छा लता सुफलती तन मैल खोता।
नाशे वियोग तम वा दुख सर्वथा ही—
हे नाथ गान करके यश आपका ही ॥४२॥

"आपकी स्तुति करने से अर्थात् आपके गुणों का गान करने से हृदय कमल खिल उठता है, शरीर मलिनता को छोड़ देता है—निर्मल हो जाता है, मनोरथरूपी कल्पवृक्ष फल जाता है, सारी विपदाएँ नष्ट हो जाती हैं, और वियोगरूपी दुःख अन्धकार के समान शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाता है।"

कल्याणकल्पकमलाविमलाशयत्व—
सौभाग्यभाग्यसुतसातियशोजुषावि।
सद्यः फलानि सकलानि जना जिनेश—
'त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते' ॥४३॥

कल्याण रूप कमला उजला[1] इरादा—
सौभाग्य दान यश पौत्र मिले सुसारा।
त्वत्पाद कंज वन के, प्रभु जो सहारे—
तो शीघ्र इष्ट फल ये मिलते सुसारे ॥४३॥

"हे जिनेश, आपके चरण कमल रूपी वन का आश्रय लेने वाले पुरुष कल्याण रूप लक्ष्मी, निर्मल अभिप्राय, सौभाग्य, भाग्यवान् पुत्र, दान और यश आदि सारे इष्ट फलों को तत्काल ही प्राप्त करते हैं।"

---

१ निर्मल अभिप्राय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नेमिर्जगावथ वशां स्मरविक्लवां तां—
मोहं परित्यज्य विधेहि वृषं वरेण्यम् ।
निःश्रेयसं सुमुखि यस्य विशुद्धचित्ता—
'स्त्रास विहाय भवतः स्मरणाद्व्रजन्ति' ।४४।

श्री नेमिनाथ फिर तो इस भांति बोले—
तू मोह छोड़ करके प्रिय धर्म को ले ।
जो जीव याद करते मन शुद्धता से—
वे छोड़ क्लेश जग के प्रिय मोक्ष जाते ॥४४॥

"इसके अनन्तर श्री नेमिनाथ भगवान् उस कामविकला और अपनी वशवर्तिनी राजीमती से बोले, "हे सुमुखी, तू इस मोह को छोड़ दे और श्रेष्ठ धर्म को धारण कर; कि जिसके स्मरण से विशुद्ध चित्त वाले जीव दुःख को छोड़ कर संसार से मोक्ष में जा पहुँचते हैं।"

धर्मं समाचर नितम्बिनि यत्प्रभावा—
ज्जीवा प्रकाशधिषणाश्च सितोदरेभ्यः ।
हंसोजसो मघवभूतविभूतयोऽत्र—
'मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः' ॥४५॥

धी[1] तो वृषाचरण से अति फैलती है—
है हंस के सम सही बगुला वही है ।
भारी विभूत नर भी सुरनाथ[2] की ले—
पाते मनोज समता फिर रूप ही वे । ४५॥

१ बुद्धि २ इन्द्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"हे नितम्बिनि, धर्म को भले प्रकार से आचरण कर; जिसके प्रसाद से जीवों का ज्ञान विकसित होता है, बगुला भी हंस सरीखी कान्ति वाले हो जाते हैं और मनुष्य इन्द्र जैसी बड़ी भारी विभूति के स्वामी होकर कामदेव के समान सुन्दर रूपवान् हो जाते हैं।"

तद्वत्परत्र सुविचित्रसुपर्वसौधा
नुद्वास्य तानि विलसन्ति सुखानि साधु ।
सिद्धेश्च सिन्धुरगते शुभशर्मभाजः –
'सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति' ॥४५॥

या भांति से महल ही सुर के अनोखे –
स्वर्गादि में अधि[1] सुपा सुख पूर्ण होते ।
हे हस्थगामनि[2], वही प्रिय मोक्ष जाते –
भोक्ता अनन्त सुख हो जगजाल खोते ॥४६॥

"इसी प्रकार से परलोक में देवों के आश्चर्यकारी महलों को अधिकृत करके वहां के सुखों को भले प्रकार से भोगते हैं, तथा हे गजगामिनी, शीघ्र ही मोक्ष को भी प्राप्त कर लेते हैं; जिसमें कल्याण-रूप अनन्त सुख के भोक्ता होकर कर्मबन्ध के भय से रहित हो जाते हैं।"

बन्धून्निबन्धननिभान्विषयान्विषाभा–
नर्थाननर्थनिवहानिव हा विमूढे ।
मत्वा विधेहि वृषमाशु यतो विशालो–
'यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते' ।४७।

---

१ अधिकार २ गजगामिनी ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये बन्धु बन्धन महा विष भोग जानों—
सारा अनर्थ धन जान सुधर्म मानों।
तेरी सुकीर्ति जिससे बुद्धि भी करेंगे—
ऊँचे सुआसन तुझे अति ही मिलेंगे ॥४७॥

"हे मुग्धे, बन्धुओं को बन्धनों के समान, विषयों को विष के समान और अर्थों को (धन को) अनर्थों के समान समझ कर शीघ्र ही धर्म को धारण कर; जिससे कि बड़े भाग्यशाली बुद्धिमान भी तेरी स्तुति करें। अर्थात् तू बड़े भारी उत्कृष्ट पद को प्राप्त होवे।"

श्रुत्वेति भर्तृ वचनं सहसा प्रबुद्धा—
प्राप्य व्रतं च सुरसद्म समाससाद।
नेमिस्ततो ह्यनुजगाम यतोऽधुनापि—
'तं मानतुङ्गमिव सा समुपैति लक्ष्मीः'।४८।

ये नाथ के वचन सुनि सहसा सुचेती—
दीक्षा तुरन्त जिनकी मन से सुलेली।
श्री नेमिनाथ फिर तो मुक्ती पधारे—
"श्री" भी सुदीर्घ पद को पश्चात् पावे ॥४८॥

अपने पति के ऐसे वचन सुन कर राजीमती एकाएक प्रबुद्ध होगई, इसलिये उसने तत्काल ही जिनदीक्षा ले ली और तप करके वह स्वर्ग को प्राप्त हुई। भगवान् नेमिनाथ उसके पीछे मोक्षधाम को पधारे। और अब आगे वह लक्ष्मी भी उन मानतुङ्ग अर्थात् पद में ऊँचे श्री नेमिनाथ को प्राप्त करेगी। अभिप्राय यह कि स्वर्ण से चयकर वह भी मुक्त हो जायगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रशस्तिः ।

श्रीसिंहसङ्घमुविनेयकधर्मसिंह —
पादारविन्दमधुलिण्मुनिरत्नसिंहः ।
भक्तामरस्तुतिचतुर्थपदं गृहीत्वा-
श्रीनेमिवर्णनमिदं विदधे कवित्वम् ॥४९॥

श्री सिंहसङ्घ शिशु जो, वृषसिंह स्वामी —
ता पाद कंज अलि रत्न सिंहानुगामी ।
ले आदिनाथ विनती तिन पाद चौथे —
श्री नेमिनाथ वर्णात्मक छन्द गूंथे ॥४९॥

श्री सिंहसंघ के अनुयायी धर्मसिंह मुनि के चरण कमलों में भ्रमर के समान अनुरक्त रहने वाले श्री रत्नसिंह मुनि ने 'भक्तामरस्तोत्र' के चौथे चरणों को लेकर यह श्रीनेमिचरित्र वर्णनात्मक काव्य बनाया।

इति श्रीभक्तामरस्तुतिचतुर्थपदसमस्यानिबद्धं
प्राणप्रियं नाम काव्यं समाप्तम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भजन

गुण गावो सदा उस ननन्दन के त्रिशला जिसकी महतारी है ।
वह भूमि महा पावन है जहाँ प्रगटे दुख संकट हारी है ॥ टेक
जब ज्ञान का दीपक बुझने लगा, वह मानव भी पथ भ्रान्ति हुआ ।
हमदर्द न था कोई भी यहाँ, तब वीर भये अवतारी है ॥
जब वीर ने जग पर डाली नजर, सुख शान्ति कहीं भी न आई नजर
तब तजा मोह झूठे जग का, वैभव को ठोकर मारी है ॥
निज जीवन का उद्धार किया, सारे जग का उपकार किया ।
लाखों को भव से तार दिया, अब आज हमारी बारी है ॥

स्तुति

जिस दिल में तुम्हारा ध्यान रहे उसे जग में किसी का भय न रहे ।
कुष्टी पति पा मैना रानी, किंचित भी न वह घबराई थी ।
मन-वचतन, अरु श्रद्धा करके सिद्ध-चक्र रचाने आई थी ।
लगी तेरी लगन, उसे जग में किसी का भय न रहे ॥ जिस ॥
जल चन्दन अक्षत पुष्प लिये नैवेद्य संजो कर लाई थी ।
दीपक का थाल सजा करके अष्ट कर्म जराने आई थी ।
फल फूल रहे नत माथ रहे उसे जग में किसी का भय न रहे । जिस
पूजा करके गंधोदक ले वह पास पति के आई आई थी ।
इक क्षण में कुष्ट मिटा सब का जै जै की टेर लगाई थी ।
हम दर पर तेरे पुकार रहे उसे जग में किसी का भय न रहे ॥ जिस ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi